स्त्री और पुरुष
में
समानता की वास्तविकता

लेखिका
बुशरा सादिक़ा
अनुवादक
डॉ० रफ़ीक़ अहमद

विषय-सूची

- दो शब्द 4

1. स्त्री और पुरुष में समानता 5
2. मानव-जीवन के विभिन्न पहलू 6
3. स्त्री और पुरुष के अपने-अपने कार्य-क्षेत्र 7
4. स्त्री और पुरुष के अधिकारों में समानता का अर्थ 8
5. समानता का ग़लत अर्थ (कर्तव्यों में समानता) 10
6. समानता का सही अर्थ (अधिकार में समानता) 12
7. दोनों विचारधाराओं के अन्तर 13
8. सही निर्धारण और समानता 15
9. सामाजिक समानता 16
10. सांस्कृतिक समानता 17
11. आर्थिक समानता 18
12. स्वामित्व का अधिकार 19
13. न्याय प्राप्ति में समानता 23
14. समानता से बढ़कर सद्व्यवहार 23
15. स्त्री और पुरुष में समानता और सामाजिक निर्धारण 24
16. क़व्वाम (संरक्षक) का अर्थ एवं महत्व 24
17. स्वाभाविक कार्य-क्षेत्र 26
18. आर्थिक संरक्षण 27
19. स्वाभाविक एवं शारीरिक संरचना 27
20. स्वाभाविक कार्य निर्धारण को न मानने के परिणाम 29
21. स्त्री के लिए वास्तविक समानता 30
22. स्त्री पीड़ित क्यों? 30
23. नकारात्मक अधिकारों के लिए सकारात्मक प्रयास 31
24. आइए क़ुरआन से फ़ैसला कर लें 32

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
'अल्लाह कृपाशील दयावान के नाम से'

दो शब्द

आज नारी-मुक्ति-आन्दोलन के परिणामस्वरूप स्त्री-पुरुष के बीच समानता का नारा ज़ोर-शोर से लगाया जाने लगा है। इस विचारधारा के कारण स्त्रियां घर से बाहर निकलकर पुरुषों के साथ बाज़ारों, होटलों, दुकानों, ऑफ़िसों और कम्पनियों इत्यादि में श्रम-साध्य कार्य करने लगीं हैं। उन्हें उन कामों से तो छुट्टी न मिली, जो प्रकृति ने उनके ज़िम्मे सौंपे थे बल्कि बहुत-से दूसरे काम भी उन पर लाद दिए गए। इसके नतीजे में पारिवारिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। माता-पिता के संरक्षण से वंचित बच्चे समाज में तरह-तरह की बुराइयाँ फैलाने का कारण बननें लगे।

इस्लाम स्त्री-पुरुषों के बीच समानता का समर्थक और ध्वजावाहक है; लेकिन इसकी दृष्टि में समानता का मतलब कामों की समानता नहीं है। इसने अधिकारों और आजीविका के क्षेत्र में इन दोनों में समानता और बराबरी रखी है। लेकिन इसने दोनों का कार्य-क्षेत्र अलग-अलग निर्धारित किया है। कामों के इस विभाजन के नतीजे में इस्लामी शिक्षाओं के आधार पर निर्मित समाज इन उथल-पुथल, अव्यवस्था, बुराइयों और आवारगी का शिकार नहीं होता, जो आज दूसरे समाजों की पहचान बन गई हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में एक ओर स्त्री और पुरुषों के बीच समानता की पाश्चात्य धारणा को प्रस्तुत करके उसके दोषों और दुष्परिणामों का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। दूसरी ओर समानता की इस्लामी धारणा का सही और सच्चा चित्रण है। पुस्तक की महिला लेखिका ने एक स्त्री की दृष्टि से विषय का विश्लेषण और स्पष्टीकरण किया है तथा इसके सभी पहलुओं पर भरपूर प्रकाश डाला है। यह पुस्तक स्पष्ट करती है कि इस्लाम की शिक्षाएँ स्त्रियों के लिए ईश्वरीय अनुग्रह हैं और सामाजिक जीवन में उन्हें भरपूर सुरक्षा प्रदान करती हैं।

—शोबा-ए दावत
जमाअत इस्लामी हिन्द
05-12-12

स्त्री और पुरुष में समानता

स्त्री और पुरुष की समानता का मामला अपनी वस्तुस्थिति की दृष्टि से इतना महत्वपूर्ण है कि इसको समस्त सामाजिक समस्याओं की बुनियाद ठहराया जा सकता है। यह कहा जा सकता है कि घरेलू जीवन की सारी खुशियाँ इस पर आधारित हैं। मात्र इनसानों का बनना और बिगड़ना ही नहीं, बल्कि हुकूमतों का कमज़ोर और स्थाई होना भी इसी पर निर्भर है। सामूहिक जीवन में स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध वास्तव में सभ्यता की आधारशिला है। कहा भी गया है कि सभ्यता के भवन की इस आधारशिला में यदि एक ईंट भी टेढ़ी रखी गई तो पूरा भवन ही टेढ़ा हो जाएगा।

एक ओर इस मामले की यह महत्ता है और दूसरी ओर इसकी जटिलताएँ इतनी बढ़ी हुई हैं कि जब तक मानव-प्रकृति की समस्त वास्तविकताओं और तथ्यों पर किसी की नज़र पूरी तरह फैली हुई न हो, वह उसको हल नहीं कर सकता। जिसने भी कहा था, सच कहा था कि इनसान एक छोटी दुनिया है। उसकी शारीरिक संरचना, उसके शरीर के अन्दर की बनावट, उसकी शक्तियाँ और योग्यताएँ, उसकी इच्छाएँ, आवश्यकताएँ, भावनाएँ एवं अनुभूतियाँ (एहसासात) और अपने अस्तित्व से बाहर की बहुत-सी चीज़ों के साथ उसके व्यावहारिक और भावनात्मक सम्बन्ध, ये सारी चीज़ें एक दुनिया अपने अन्दर रखती हैं। इनसान को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता जब तक कि उस दुनिया का एक-एक गोशा निगाहों के सामने स्पष्ट न हो जाए और मानव जीवन की इस बुनियादी समस्या का भी निवारण नहीं हो सकता जब तक इस इनसान को पूरी तरह समझ न लिया जाए।

इनसानी उलूम (मानव-ज्ञान) में से कोई ज्ञान भी ऐसा नहीं है, जो कमाल की अन्तिम सीमा तक पहुँच चुका हो, अर्थात् जिसके सम्बन्ध में यह दावा किया जा सकता हो कि जितनी वास्तविकताएँ ज्ञान के इस विभाग से सम्बन्ध रखती हैं उन सब पर उसने कमाल और महारत (निपुणता) हासिल कर ली है। अब तक जो तथ्य सामने आ चुके हैं उनकी व्यापकताओं की बारीकियों की भी यह स्थिति है कि इनसान की नज़र इन सब पर एक ही समय में नहीं

पड़ सकती। एक पहलू सामने आता है तो दूसरा पहलू नज़र से ओझल हो जाता है। कहीं नज़र चूक जाती है और कहीं व्यक्तिगत रुझान रुकावट बन जाते हैं। इस दोहरी कमज़ोरी के कारण इनसान खुद अपनी ज़िन्दगी के उन मसलों को हल करने के जितने भी उपाय करता है वे नाकाम होते हैं और अनुभव अंततः उन उपायों की कमियों को उजागर कर देता है। सही हल उसी समय सम्भव है, जबकि न्याय-बिन्दु को पा लिया जाए और न्याय-बिन्दु पाया नहीं जा सकता जब तक कि सारी वास्तविकताएँ और उनके सभी पहलुओं पर बराबर नज़र न हो। यह नज़र किसी इनसान की नहीं बल्कि इनसान को पैदा क़रनेवाले ईश्वर ही की हो सकती है, जिसने वास्तव में स्त्री और पुरुष के अधिकारों में अन्तिम सीमा तक सन्तुलन स्थापित किया और एक न्याय पर आधारित व्यवस्था स्थापित करके इनसान को दी है। यह इस्लाम ही है जो मानवाधिकार का ध्वजावाहक है और उसके साथ-साथ इनसान को न्याय-बिन्दु का मार्ग दिखाता है। अथवा वह इस बात का प्रयास करता है कि कोई व्यक्ति अधिकारों से वंचित न रहे और दूसरा व्यक्ति अपने अधिकारों में सीमा का उल्लंघन भी न करे।

मानव-जीवन के विभिन्न पहलू

किसी व्यवस्था को चलाने के लिए यह ज़रूरी है कि उस व्यवस्था के विभिन्न पुर्ज़ों को उचित स्थान पर रखा जाए। ईश्वर ने दुनिया की व्यवस्था चलाने के लिए स्वयं उनकी भूमिका का स्थान निश्चित कर दिया है, ताकि उसमें कोई बाधा उत्पन्न न हो। विश्व की व्यवस्था को विश्व के स्रष्टा ने बनाया ही इस सिद्धान्त और उसूल पर है कि उससे सारे लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक-दूसरे पर निर्भर रहने के लिए विवश हैं। इनमें से हरेक किसी पहलू से अपूर्ण और किसी पहलू से पूर्ण है। हरेक किसी पहलू से वांछित और किसी पहलू से इच्छुक भी है, और आपसी सहयोग से ये अपनी-अपनी कमियों को पूरा करते हुए जीवन-उद्देश्य को पाने की कोशिश करते हैं। पृथ्वी और आकाश, रात व दिन, गर्मी व सर्दी, जल-थल इन सबमें इसी तरह का सम्बन्ध है। इनमें से बजाए खुद न कोई दूसरे से निस्पृह है और न इनमें से किसी को यह दावा करने का अधिकार है कि इस विश्व व्यवस्था में जो स्थान उसका है किसी दूसरे का नहीं, या जो उद्देश्य उसके माध्यम से

पूरा हो रहा है वह किसी श्रेणी में या किसी प्रकार से उस उद्देश्य से बुलन्द है जो दूसरे के माध्यम से पूरा हो रहा है।

ग़ौर कीजिए कि इस एतिबार से तमाम विभिन्न भागों में जो असाधारण समानता है क्या कोई व्यक्ति इस समानता का इनकार करने की हिम्मत कर सकता है? लेकिन इस समानता के बावजूद कभी आपने देखा कि मात्र इस अहं के आधार पर कि हम आपस में बिल्कुल बराबर हैं ज़मीन-आसमान से जा टकराई हो, चाँद ने सूरज के कक्ष में घूमना प्रारम्भ कर दिया हो, रात ने दिन की सीमाओं में हस्तक्षेप किया हो, सर्दी ने गर्मी का रूप धारण कर लिया हो और समन्दर ने ज़मीन पर चढ़ाई कर दी हो। अगर ख़ुदा-न-ख़ास्ता ऐसा हो जाए और एक-दो दिन के लिए नहीं मात्र कुछ क्षणों के लिए ही हो जाए, तो यह सारी व्यवस्था छिन्न-भिन्न होकर रह जाएगी। ठीक इसी सिद्धान्त और उसूल पर स्त्री और पुरुष दोनों बराबर हैं। ज़िन्दगी की भाग-दौड़ और उतार-चढ़ाव में सदैव स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के मददगार और सहयोगी रहे हैं। ज़िन्दगी के भार को दोनों ने मिलकर संभाला है। सभ्यता का विकास दोनों के संयोग से हुआ है। दोनों सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माता हैं। मानव-जीवन के उद्‌देश्य की ज़िम्मेदारी दोनों पर समान रूप से आती है। जीवन स्त्री और पुरुष दोनों ही का मुहताज है। जिस तरह पुरुष अपना जीवन-उद्‌देश्य रखता है, उसी प्रकार स्त्री के जन्म का भी एक उद्‌देश्य है, और ईश्वर इन दोनों प्रकार के अस्तित्व के माध्यम से अपेक्षित उद्‌देश्य की पूर्ति कर रहा है।

स्त्री और पुरुष के अपने-अपने कार्य-क्षेत्र

स्त्री और पुरुष यद्यपि ज़िन्दगी की गाड़ी के दो पहिए हैं लेकिन दोनों का कार्यक्षेत्र अलग-अलग है। इस फ़र्क़ की मस्लहत और उद्देश्य दोनों को एक ही प्रकार के दो व्यक्तित्व बनाने के बावजूद विभिन्न प्रकार की भूमिका प्रदान करने में निहित है। एक के अस्तित्व को इनसानों की पैदाइश में वृद्धि करने के लिए विशेष क्षमता दी गई है, और दूसरे के अस्तित्व को शारीरिक मेहनत, परिश्रम और सामाजिक दौड़-धूप के लिए विशेष प्रकार की बनावट दी गई है। ईश्वर के इस विशेष तरीक़े को न हम नज़रअंदाज़ कर सकते हैं, न हम बदल सकते हैं और न व्यर्थ ठहराकर ज़िन्दगी के कारख़ाने में कार्य-निर्धारण के उसूल और सिद्धान्त की उपेक्षा कर सकते हैं। स्त्री और पुरुष के लिए अलग प्रकार

के शरीर की संरचना और उनके स्वभाव में अलग प्रकार के रुझान ईश्वर की रचना के उद्देश्य को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त हैं। इससे सिद्ध होता है कि ईश्वर ने दोनों के लिए अलग-अलग कार्यक्षेत्र निर्धारित किया है। इस भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्र के निर्धारण की उपेक्षा करके हम ईश्वर के प्रबन्धन के विरुद्ध दूसरे रास्ते अपनाएंगे तो अवश्य ही किसी पर काम का बोझ बढ़ जाएगा और किसी पर कम हो जाएगा। अतः मानवजाति की भलाई और सफलता का रहस्य इसमें निहित है कि दोनों बिना किसी टकराव और बिगाड़ के अपनी-अपनी योग्यता और क्षमता पर संतुष्ट रहें अन्यथा टकराव की स्थिति दुनिया को नष्ट करके रख देगी और इस ग़ैर-फ़ितरी (अप्राकृतिक) कार्य-निर्धारण से बहुत-सी सांस्कृतिक और सामाजिक जटिलताएँ पैदा होंगी।

इस्लाम स्त्री और पुरुष को समानता का दर्जा देने के बावजूद उनकी वास्तविक और स्वाभाविक योग्यताओं की दृष्टि से सामूहिक व्यवस्था में उनको अलग-अलग स्थान देता है और उनमें से हरेक को उस स्थान पर रखता है, जिस स्थान पर वे बेहतर तरीक़े से समाज को अपनी योग्यताओं से फ़ायदा पहुँचा सकें। स्त्री और पुरुष के जन्म के साथ ईश्वर ने जो ज़िम्मेदारियाँ (फ़र्ज़) दी हैं उनमें से प्रत्येक ज़िम्मेदारी बजाए खुद उतनी ही महत्वपूर्ण और उतनी ही ज़रूरी है, जितनी कि दूसरी ज़िम्मेदारी। यह नहीं कह सकते कि घर का काम संभालना कम महत्वपूर्ण है और आफ़िस का अधिक महत्वपूर्ण है, या बच्चों का पालन-पोषण एक मामूली कार्य है और नौकरी या व्यापार एक महत्वपूर्ण कार्य है। सामूहिक एवं सामाजिक व्यवस्था की हिफ़ाज़त और सुरक्षा के जितने भी कार्य हैं सब बराबर और ज़रूरी हैं। समाज का जो पुर्ज़ा इन कार्यों में से जिस कार्य को करने के लिए भी बना है, अगर वह ठीक-ठीक उसे पूरा कर रहा है तो पूरी मशीन के अन्दर उसका महत्व और मूल्य किसी बड़े से बड़े पुर्ज़े के बराबर है और उसको तुच्छ और मामूली समझ कर नज़रअंदाज़ करने की कोई वजह नहीं है।

स्त्री और पुरुष के अधिकारों में समानता का अर्थ

आइए देखें कि अधिकार किसे कहते हैं? और अधिकारों में समानता का क्या अर्थ है? एक पश्चिमी विचारक ''गालसस'' अधिकार की परिभाषा इन शब्दों में व्यक्त करता है, ''मानव अधिकार या मौलिक अधिकार आधुनिक

नाम है उन अधिकारों का जिन्हें पारम्परिक रूप से स्वाभाविक अधिकार कहा जाता है। उनको इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि वे नैतिक अधिकार जो हरेक इनसान को हर जगह और हर समय इस आधार पर प्राप्त होते हैं कि वह दूसरे समस्त प्राणियों और जीवधारियों की अपेक्षा इस दृष्टि से श्रेष्ठ है कि वह विवेकशील और सदाचारी है। न्याय और इनसाफ़ को बुरी तरह कुचले बिना कोई व्यक्ति इन अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता।''

मानो अधिकार वह चीज़ है जिसे हासिल करने का कोई भी व्यक्ति क़ानूनी अधिकार रखता हो। अर्थात् जो कुछ प्राप्त हो वह अधिकार है और जो कुछ अदा करना पड़े वह कर्तव्य है। इससे इतर कि कोई स्त्री है या पुरुष, हर इनसान को जान व माल की सुरक्षा, मान एवं सम्मान की सुरक्षा, निजी जीवन की सुरक्षा, व्यक्तिगत आज़ादी की सुरक्षा, राय व्यक्त करने की स्वतंत्रता, अत्याचार के विरुद्ध विरोध प्रकट करने का अधिकार, न्याय प्राप्ति का अधिकार, आर्थिक सुरक्षा का अधिकार, गुनाहों से बचाव का अधिकार, संगठन, सम्मेलन तथा राजनीतिक जीवन में सम्मिलित होने का अधिकार जैसे मौलिक अधिकार प्राप्त होने चाहिएँ। अधिकारों में समानता यह है कि ये समस्त अधिकार स्त्री और पुरुष को मिलते रहें। इन अधिकारों के हनन की दशा में आवाज़ उठाई जा सके और उसे इनसाफ़ और न्याय के साथ सुना जा सके।

स्त्री और पुरुष के अधिकारों में इस्लाम की प्रदान की हुई समानताओं को देखने से पहले इस बुनियादी प्रश्न पर ग़ौर कीजिए कि उपरोक्त अधिकार किसने निर्धारित किए हैं? उनकी क़ानूनी और नैतिक हैसियत और उनका औचित्य क्या है? क्या इनसान अपने किसी व्यक्तिगत अधिकार की बिना पर उन अधिकारों का पात्र बना है या अपने किसी दावे, किसी संघर्ष या अपनी स्वीकृत माँगों की वजह से उसे ये अधिकार प्राप्त हुए हैं? मानवाधिकार किसी सामाजिक संधि से, हुकूमत और जनता के बीच होने वाली किसी संधि से, मानव-रचित किसी संविधान से या इनसान और इनसान के बीच होने वाले किसी समझौते से निश्चित होते हैं। वास्तविकता यह है कि मानवाधिकार की बुनियाद मात्र ईश्वरीय आदेश है। उसने हर इनसान के अधिकारों का निर्धारण किया है और उनके बीच प्राथमिकताएँ निश्चित की हैं। अन्तिम ईशदूत हज़रत

मुहम्मद (सल्ल॰) ने हज के अवसर पर जो भाषण दिया था वह 'मानवाधिकार का घोषणा पत्र' की हैसियत रखता है। इस घोषणा पत्र और क़ुरआनी आदेश को सामने रखिए तो अवश्य ही आप इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि यह मात्र इस्लाम ही है, जो मानवाधिकार का ध्वजावाहक है। वास्तव में स्त्री का सम्मान और उसके अधिकार की कल्पना इस्लाम की प्रदान की हुई है। आज स्त्रियों के अधिकार और समानता के जो नारे आप सुन रहे हैं यह सब उसी क्रान्तिकारी आवाज़ की गूँज है जो हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की ज़बान से बुलन्द हुई थी और जिसने इनसानी सोच की दिशा को सदैव के लिए बदल दिया।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो गई कि जिसने अधिकार की कल्पना दी उसी ने सबसे बढ़कर और बेहतरीन अधिकार भी दिए, बल्कि सच तो यह है कि अधिकार उसी ने ही प्रदान किए हैं।

समानता का ग़लत अर्थ (कर्तव्यों में समानता)

समानता और बराबरी का एक अर्थ यह लिया जाता है कि स्त्री और पुरुष दोनों समान पैदा हुए हैं। इसीलिए राष्ट्रीय व्यवस्था में दोनों को बराबर हिस्सा मिलना चाहिए या यह कि ईश्वर ने जिन शक्तियों और योग्यताओं से पुरुष को लैस किया है और पुरुष जो कुछ भी कर सकता है स्त्री भी वह सब कुछ कर सकती है। अतः पुरुष और स्त्री का कार्यक्षेत्र एक होना चाहिए। आज स्त्रियों की आज़ादी और स्त्री और पुरुष की समानता के नारे इसी अर्थ एवं आशय से लगाए जा रहे हैं कि जब तक स्त्री टैंक, तोप, रेल का इंजन, समुद्री जहाज़, हवाई जहाज़, सड़क कूटने का इंजन और सामान से लदा हुआ ट्रक नहीं चलाएगी, वेल्डिंग सेट हाथ में नहीं लेगी, पुल, बाँध और ऊँची-ऊँची इमारतें नहीं बनाएँगी, उसे पुरुष के बराबर होने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होगा। मानो कि जब तक स्त्री वह कार्य न करे जो पुरुष कर रहे हैं, उस समय तक समानता और बराबरी की शर्तें पूरी नहीं होतीं, हालाँकि यह बराबरी और समानता वास्तव में अधिकारों में नहीं बल्कि कर्तव्यों में समानता है, और समानता की यह ऐसी कल्पना है जो खुद मर्दों में भी मौजूद नहीं। ज़िम्मेदारियों और कर्तव्यों में बढ़ोत्तरी पर विवश करनेवाली स्त्रियाँ इस भ्रम में हैं कि वे अपना अधिकार माँग रही हैं।

इस अर्थ ने नारी से उसका नारीत्व छीन लिया और उस पर पुरुष बन जाने का जुनून पैदा कर दिया। यह जुनून उसके बालों का अन्दाज़, उसका पहनावा, उसकी चाल-ढाल, उसके खेल-कूद और सभी क्रियाकलापों में हर जगह उभर आया है। स्त्री ने पुरुष के पीछे दौड़ते-दौड़ते खुद पुरुष का रूप धारण कर लिया है। यदि स्त्री को उसका उचित स्थान न दिया जाए तो उसके नतीजे में उसके दुष्प्रभाव खुद उस पर भी पड़ते हैं और उसके फलस्वरूप पूरा समाज भी उस से प्रभावित होता है। इसी प्रकार अगर पुरुष को उसके सही स्थान के अतिरिक्त, जहाँ के लिए उसकी योग्यताएँ माँग कर रही होती हैं, किसी दूसरे स्थान पर प्रयोग किया जाए तो अवश्य उसका प्रभाव भी यही होता है। एक ओर पुरुष की योग्यताएं उससे नुक़्सान उठाती हैं और दूसरी ओर समाज उसकी क्षमताओं और योग्यताओं के फ़ायदे से वंचित हो जाता है।

समानता की यह परिभाषा अपनी सरल और प्रारम्भिक स्थिति में बहुत सार्थक दिखाई पड़ती है और भावनाओं में बहने वाले पुरुषों और स्त्रियों को अपील भी करती है, लेकिन जब उसको आधार बनाकर उस पर सामूहिक जीवन का निर्माण शुरू होता है तब उसकी कमियाँ और कमज़ोरियाँ उजागर होना शुरू हो जाती हैं। यहाँ तक कि समाज में एक मामूली अक़्ल रखनेवाला व्यक्ति भी यह महसूस कर लेता है कि जिस सामाजिक व्यवस्था का आधार इस विचारधारा पर है, उसकी बुनियाद वास्तव में रेत पर है, जिसके गिर जाने का ख़तरा हर समय बना रहता है। उसके दुष्प्रभाव जो समाज और सामूहिक जीवन पर पड़े हैं वे किसी से ढके-छुपे नहीं। स्त्री और पुरुष की समानता का छलपूर्ण नारा देकर एक ओर स्त्री के कंधे पर अधिक ज़िम्मेदारियों और कर्तव्यों का बोझ लाद दिया गया और दूसरी ओर स्वार्थी पुरुष ने उसे हर जगह दिल बहलाने का खिलौना बना डाला। घर से लेकर कार्यालय एवं कारख़ाना और जीवन के प्रत्येक विभाग में एक या एक से अधिक स्त्रियों को साथ लगाए रखने के शौक़ीन पुरुषों ने उसकी समीपता और सेवा से खुद भी लाभ उठाया और उसे मॉडल-गर्ल और सैक्स-गर्ल आदि का रूप देकर अपने कारोबार को भी ख़ूब चमकाया।

आज हालत यह है कि सिग्रेट, ब्लेड, शराब, टूथ-पेस्ट, साबुन और दुनिया की हर चीज़ को बेचने के लिए स्त्री के हुस्न और सौन्दर्य तथा उसकी

एक-एक अदा को इस्तेमाल किया जा रहा है। स्त्रियाँ प्रचार एवं विज्ञापन का सबसे बड़ा साधन और पुरुष व्यापारियों और कारोबारियों के लिए नए-नए ग्राहक फाँसने का यंत्र बन गई हैं। यूरोप का पूरा व्यापार सेक्स की बीमारी से ग्रस्त है। अब स्त्रियाँ वहाँ धक्के खाती फिरती हैं और कोई उनको पूछता तक नहीं, सिवाए यह कि पूछने की कोई विशेष वजह हो। अब भी पश्चिमी देशों में स्त्री और पुरुष एक ही प्रकार के जो कार्य करते हैं उसका पारिश्रमिक दोनों को बराबर नहीं दिया जा रहा है और इस पर स्त्रियाँ शोर मचा रही हैं। फिर जिन मैदानों में स्त्रियों और पुरुषों को बराबर से खड़ा कर दिया गया है उनमें चूंकि ईश्वर ने स्वाभाविक रूप से स्त्रियों को पुरुषों के बराबर नहीं किया इस कारण लाखों प्रयासों के बावजूद भी वे पुरुष की बराबरी नहीं कर सकी हैं। वर्तमान समय में भी आप देखिए पश्चिमी देश हों या साम्यवादी देश, कहीं भी ऊँचे-ऊँचे पद स्त्रियों को नहीं दिए जा रहे हैं, बल्कि वे पुरुषों को ही दिए जाते हैं।

समानता का सही अर्थ (अधिकार में समानता)

समानता और बराबरी का सही अर्थ यह है कि स्त्री और पुरुष इनसान होने की हैसियत से बराबर हैं जिस तरह पुरुष इज़्ज़त और सम्मान का पात्र है, उसी तरह स्त्री भी मान-सम्मान की पात्र है। जिस तरह पुरुष कुछ विशेष क्षमताएँ एवं शक्तियाँ लेकर आया है, उसी तरह स्त्री भी कुछ विशेष योग्यताएँ एवं शक्तियाँ लेकर पैदा हुई है। जिस प्रकार पुरुष अपनी कुछ विशेष भावनाएँ और कुछ स्वाभाविक माँगें और आवश्यकताएँ रखता है, उसी प्रकार स्त्री भी अपने कुछ विशेष रुझान एवं झुकाव और कुछ स्वाभाविक माँगें और आवश्यकताएँ रखती है। इसलिए स्त्री तथा पुरुष दोनों को अपने-अपने स्वाभाविक माँगों और रुझानों के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा की तरह अपनी-अपनी परिधि में ईश्वर की मर्ज़ी को पूरा करने में सक्रिय रहना चाहिए। सामाजिक मामलों में दोनों पर उनकी स्वाभाविक योग्यताओं के लिहाज़ से ज़िम्मेदारियाँ होनी चाहिए और उनकी ज़िम्मेदारियों के ही लिहाज़ से उनको अधिकार मिलना चाहिए। हरेक की पैदाइश से फ़ितरत (प्रकृति) का जो मंशा है उसको वह फ़ितरत के नियम व सिद्धान्तों के अन्तर्गत अपनी-अपनी परिधि के अन्दर समान रूप से स्वतन्त्र और समान रूप से पाबन्द रहकर पूरा करें।

इस्लामी धारणा में तीन बातों का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है।

प्रथम यह कि स्त्री पर, पुरुष अपने अधिकारों से नाजाइज़ और अनुचित लाभ उठाकर ज़ुल्म और अत्याचार न कर सके, और ऐसा न हो कि पुरुष और स्त्री का सम्बन्ध स्वामी और सेविका का सम्बन्ध बन जाए।

दूसरे यह कि स्त्री को ऐसे सारे अवसर मिलने चाहिए जिनसे फ़ायदा उठाकर वह सामाजिक व्यवस्था की सीमाओं में रहते हुए अपनी स्वाभाविक क्षमताओं को अधिक से अधिक विकसित कर सके और सभ्यता के निर्माण में अपनी भूमिका बेहतर से बेहतर अन्दाज़ में प्रस्तुत कर सके।

तीसरे यह कि स्त्री के लिए सफ़लता और उन्नति के ऊँचे से ऊँचे दर्जों तक पहुँचना सम्भव हो, मगर उसकी तरक़्क़ी और सफलता जो कुछ भी हो स्त्री होने की हैसियत से हो। पुरुष बनना न तो उसका अधिकार है और न मर्दाना ज़िन्दगी के लिए उसको तैयार करना सभ्यता एवं संस्कृति के लिए लाभकारी है।

इस धारणा के नतीजे में प्रारम्भिक दौर में स्त्री ने जो मक़ाम और स्थान प्राप्त किया और सभ्यता एवं संस्कृति की जो न भुलाने योग्य सेवाएँ प्रदान कीं, वह यहाँ व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि मुसलमान होने की हैसियत से हम सब इस शानदार अतीत से भली-भाँति अवगत हैं।

दोनों विचारधाराओं के अन्तर

यदि ग़ौर किया जाए तो ज्ञात होगा कि समानता और बराबरी की ये दोनों विचारधाराएँ अपने आधार, अपने परिणाम एवं प्रभाव में इतने भिन्न हैं कि जिस तरह पूरब और पश्चिम को एकत्र नहीं किया जा सकता उसी तरह दोनों विचारधाराओं को एकत्र करना सम्भव नहीं है। इन दोनों विचारधाराओं के आधार पर सामूहिक जीवन की जिन इमारतों का निर्माण होता है, वे अपनी बुनियाद, अपने ढाँचे, अपने निर्माण-विधि, अपनी सामूहिक आकृति और अपने सामाजिक लाभ एवं उद्देश्य के लिहाज़ से इस हद तक भिन्न होती हैं कि यह सम्भव नहीं है कि एक का टुकड़ा दूसरे के साथ लगाया जा सके। अगर इस प्रकार का कोई प्रयास किया जाए तो उससे हमारे सामूहिक जीवन के किसी एक भाग में ही ख़राबी पैदा न होगी, बल्कि यह एक त्रुटि हमारी पूरी

सामूहिक व्यवस्था को ध्वस्त कर देगी।

मौलिक अधिकारों को सामने रखते हुए, अब आइए देखें कि इस्लाम किस प्रकार पुरुष और स्त्री के बीच समानता स्थापित करता है।

समाज में स्त्री-पुरुष की समानता की घोषणा क़ुरआन मजीद इन शब्दों में प्रस्तुत करता है—

> "लोगो, अपने रब से डरो जिसने तुमको एक जान से पैदा किया और उसी जान से उसका जोड़ा पैदा किया।" (क़ुरआन, 4:1)

इस आयत ने स्त्री के तुच्छ और हीन होने से सम्बन्धित उन सारी धारणाओं का अन्त कर दिया जो प्राचीन धर्मों और संस्कृतियों में पाई जाती थीं। इस्लाम का ऐलान है कि स्त्री कोई मामूली, और तुच्छ अस्तित्व नहीं है। उसका अस्तित्व उद्देश्यहीन नहीं है, बल्कि जिस एक जीव से पुरुष अस्तित्व में आया है उसी से स्त्री भी अस्तित्व में आई है और जिस तरह मानव-समाज का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ पुरुष है उसी तरह समाज का दूसरा महत्वपूर्ण स्तम्भ स्त्री है। इस समाज का अस्तित्व, उसका भविष्य इन दोनों में से किसी एक पर निर्भर नहीं और न यह कि एक पर ज़्यादा और दूसरे पर कम निर्भर है, बल्कि इस लिहाज़ से दोनों बराबर की हैसियत रखते हैं।

अल्लाह के यहाँ श्रेष्ठता का पैमाना तक़वा (ईशभय) है, पुरुष और स्त्री होना नहीं। इरशाद है—

> "लोगो, हमने तुमको एक पुरुष और एक स्त्री से पैदा किया और फिर तुम्हारी बिरादरियाँ और जातियाँ बना दीं ताकि तुम एक दूसरे को पहचानो। वास्तव में अल्लाह की दृष्टि में तुममें सब से अधिक प्रतिष्ठित वह है जो तुममें सबसे अधिक परहेज़गार है।"
>
> (क़ुरआन, 49:13)

परलोक (आख़िरत) में दर्जों की बुलन्दी और कामयाबी व सफलता का सम्बन्ध किसी लिंग विशेष से नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण समानता के सिद्धान्तों के अनुसार स्त्री और पुरुष दोनों अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) की आज्ञापालन और पैरवी करके एक-दूसरे से बढ़कर ईश्वर का सामीप्य प्राप्त कर सकते हैं। क़ुरआन में है—

"जो व्यक्ति भी अच्छे कर्म करेगा, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री बशर्ते कि वह मोमिन हो, उसे हम संसार में पवित्र जीवनयापन कराएँगे और परलोक में ऐसे लोगों को उनके बदले उनके अच्छे कर्मों के अनुसार दिए जाएँगे।" (क़ुरआन, 16:97)

"मैं तुम में से किसी का कर्म अकारथ करनेवाला नहीं हूँ। चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, तुम सब एक-दूसरे के सहजाति हो।" (क़ुरआन, 3:195)

अर्थात् स्त्री और पुरुष दोनों में से जो भी अपने कर्म-पत्र (आमालनामे) को चरित्र और आचरण की पवित्रता से सुशोभित कर ले सफलता और कामयाबी उसके लिए निश्चित हो चुकी है।

क़ुरआन में स्त्री-पुरुष दोनों को समान हैसियत देकर कुछ आयतों में दोनों को इनसान की हैसियत से सम्बोधित किया गया है और कुछ आयतों में नाम लेकर। ऐ इनसानो! और ऐ ईमानवालो! कहकर क़ुरआन में अनगिनत स्थानों पर दोनों को सम्बोधित किया गया है। जिस तरह मर्दों पर आदेश अवतरित किए गए हैं, उसी तरह स्त्रियों पर भी आदेश अवतरित किए गए हैं। स्त्री को मात्र स्त्री होने की बिना पर अपवादित क़रार नहीं दिया गया। ज़िम्मेदारी और जवाबदेही में स्त्री को पुरुष का दुम-छल्ला नहीं बनाया गया, बल्कि उसे विशेष हैसियत दी गई है। क़ुरआन में सूरह निसा की आयत 32 में अल्लाह तआला फ़रमाता है—

"जो कुछ पुरुषों ने कमाया है उसके अनुसार उनका हिस्सा है और जो कुछ स्त्रियों ने कमाया है उसके अनुसार उनका हिस्सा।" (क़ुरआन, 4:32)

सही निर्धारण और समानता

अलग-अलग कार्य-क्षेत्र के बावुजूद पुरुष को विशेषताओं के लिहाज़ से स्त्री पर श्रेष्ठता प्राप्त नहीं है। क़ुरआन मजीद में इस सच्चाई को इन शब्दों में स्पष्ट किया गया है—

"और जो कुछ अल्लाह तआला ने तुममें से किसी को दूसरे की अपेक्षा अधिक दिया है, उसकी कामना न करो, जो कुछ पुरुषों ने

कमाया हैं उसके अनुसार उनका हिस्सा है और जो कुछ स्त्रियों ने कमाया है, उसके अनुसार उनका हिस्सा है। हाँ अल्लाह से उसके अनुग्रह की दुआ करते रहो। निःसन्देह, अल्लाह हर चीज़ का इल्म रखता है।''
(क़ुरआन, 4:32)

इस आयत से एक ओर तो यह बात स्पष्ट हो गई कि फ़ितरत (प्रकृति) की ओर से जो विशेषताएँ पुरुष और स्त्री को मिली हुई हैं उनकी श्रेष्ठता का पहलू किसी एक ही के साथ सीमित नहीं है, बल्कि इस श्रेष्ठता में दोनों बराबर के हिस्सेदार हैं। दूसरी ओर यह बात स्पष्ट हो गई कि स्त्री और पुरुष दोनों की सफलता और श्रेष्ठता इस बात में है कि एक-दूसरे के गुणों पर ईर्ष्या करने और उनकी नक़ल करने के बजाय हरेक अपने-अपने हिस्से की नेमतों पर आभारी रहें और उनका हक़ अदा करने की कोशिश करे।

ईश्वर ने अपने-अपने कार्य-क्षेत्र के लिहाज़ से अपनी अनुकम्पाओं में स्त्री या पुरुष किसी के साथ भी कंजूसी नहीं की है। पुरुष के अन्दर अगर नई-नई रचना करने एवं आविष्कार की योग्यता प्रदान की है, तो स्त्री को इस रचना और आविष्कारों के नतीजे और प्रभावों को संभालने का सलीक़ा और कला प्रदान की है। पुरुष को अगर हुकूमत और शासन करने की हिम्मत और हौसला दिया है, तो स्त्री को घर चलाने और बसाने की क्षमता एवं योग्यता प्रदान की है। पुरुष को अगर विशेष विद्याओं और कलाओं से स्वाभाविक लगाव है, तो स्त्री के लिए भी कुछ विशेष विद्या एवं कलाएँ हैं, जिनसे उसका स्वाभाविक सम्बन्ध है। पुरुष अगर अपने अन्दर सख़्ती, क़ुव्वत और बहादुरी की विशेषता रखता है, तो स्त्री भी अपने अन्दर दिलकशी, मिठास और आकर्षण की शक्ति रखती है। ईश्वर के इस निगारख़ाने का सौन्दर्य उनमें किसी एक ही की ख़ूबियों से नहीं है, बल्कि स्त्री-पुरुष दोनों की विशेषताओं से है।

सामाजिक समानता

इस्लाम ने समाज में स्त्री को माँ, बहन, बीवी और बेटी की हैसियत से न सिर्फ़ बराबर, बल्कि श्रेष्ठता और दर्जे में पुरुष से बढ़कर अधिकार दिए हैं—

माँ की हैसियत से : एक व्यक्ति ने रसूलुल्लाह (सल्ल॰) से पूछा—मेरे सद्व्यवहार का सबसे अधिक पात्र कौन है? आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया : तेरी

माँ। (तीन बार उसने यही प्रश्न किया और तीनों बार नबी (सल्ल॰) ने यही जवाब दिया) उसने चौथी बार पूछा फिर कौन? फ़रमाया तेरा पिता। ग़ौर कीजिए कि माँ, अर्थात् स्त्री का दर्जा पिता, अर्थात् पुरुष से कितना अधिक बुलन्द है।

बेटी की हैसियत से : अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने फ़रमाया—"जिसने दो लड़कियों का पालन-पोषण किया यहाँ तक कि वह बालिग़ हो गईं तो प्रलय (क़ियामत) के दिन मैं और वह इस तरह आएँगे जैसे मेरे हाथ की उँगलियाँ साथ-साथ हैं (नबी (सल्ल॰) ने अपने हाथ की दो उँगलियाँ मिलाकर दिखाईं)।" (हदीस : मुस्लिम)

बहन की हैसियत से : इसी तरह सुरक्षा और पवित्रता की दृष्टि से बहन को भी बराबर से बढ़कर दर्जा दिया गया है।

पत्नी की हैसियत से : पत्नी की हैसियत बहुत अधिक है। पत्नी के बारे में पति को यहाँ तक कह दिया गया। "दुनिया की नेमतों में बेहतरीन नेमत नेक बीवी है।"

ग़ौर कीजिए कि स्त्री को हर हैसियत से समाज में कितनी इज़्ज़त और सम्मान का पात्र ठहराया गया है।

सांस्कृतिक समानता

सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से इस्लाम ने स्त्री को पुरुष से बढ़कर अधिकार प्रदान किए हैं—

पति के चयन का अधिकार : अगर पुरुष को पत्नी के चयन का अधिकार है तो स्त्री को भी पति के चुनाव का पूरा अधिकार प्राप्त है। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई व्यक्ति उसका विवाह नहीं कर सकता। अगर वह स्वयं अपनी इच्छा से किसी मुस्लिम के साथ विवाह कर ले तो उसे कोई रोक नहीं सकता, परन्तु अपने सम्मान की सुरक्षा के लिए यह तरीक़ा अपनाया गया कि लड़कियाँ अपना विवाह स्वयं न करती फिरें, क्योंकि उनके लिए यह सम्भव नहीं होता कि वे अच्छी तरह पुरुष और उसके सम्बन्धियों को परख या देख सकें। इसमें पिता और परिवार के सामाजिक स्तर और सम्बन्धों का ख़याल रखना बेहतर साबित होता है। इसलिए इस्लामी क़ानून में वली (संरक्षक) और लड़की दोनों

की इच्छा ज़रूरी क़रार दी गई है, मगर यदि उसकी शादी किसी ऐसे व्यक्ति से करनी पड़े जो उसके ख़ानदान और परिवार के स्तर से गिरा हुआ हो तो केवल इस स्थिति में उसके वली (संरक्षक) को आपत्ति का अधिकार प्राप्त है।

अल्पावस्था के विवाह में अधिकार : अगर किसी लड़की का विवाह कम उम्री (अल्पावस्था) में कर दिया गया हो तो वह बालिग़ (वयस्क) होकर उसे बरक़रार रखने या निकाह तोड़ देने का अधिकार रखती है।

खुला का अधिकार : इस्लाम में तलाक़ देने का अधिकार पुरुष को प्राप्त है, तथापि इसके साथ-साथ अप्रिय, निष्क्रिय और अत्याचारी पति से छुटकारा पाने के लिए स्त्री को खुला (तलाक़ की माँग) और निकाह तोड़ देने या अलग हो जाने के अधिकार दिए गए हैं।

पुनः विवाह का अधिकार : इस्लाम में पत्नी और विधवाओं और ऐसी सामान्य स्त्रियों को जिनके विवाह क़ानूनी तौर से ख़त्म हो चुके हों या जिनको न्यायालय द्वारा पति से अलग कर दिया गया हो, पुनः विवाह का अधिकार बिना किसी शर्त के दिया गया है। इस बात की व्याख्या भी कर दी गई है कि उन पर पूर्व पति या उसके किसी सम्बन्धित व्यक्ति का कोई अधिकार बाक़ी नहीं रहा। यह वह अधिकार है जो आज यूरोप व अमेरिका के अधिकांश देशों में भी स्त्री को नहीं दिया गया है।

दीवानी और फ़ौजदारी के क़ानून में : दीवानी और फ़ौजदारी के क़ानून में स्त्री और पुरुष के बीच सम्पूर्ण समानता स्थापित की गई है। जान व माल और सम्मान की सुरक्षा में इस्लामी क़ानून स्त्री और पुरुष के बीच किसी प्रकार का अन्तर नहीं करता।

आर्थिक समानता

सबसे मुख्य और आवश्यक चीज़ जिसके कारण समाज में इनसान का सम्मान बढ़ता है और जो आज स्त्री और पुरुष की समानता और बराबरी के नारे का सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण पहलू है, वह आर्थिक स्थिति की मज़बूती है। तनिक विचार करें कि इस्लाम ने स्त्री को जीविका की ज़िम्मेदारी से मुक्त रखते हुए भी आर्थिक दृष्टि से न केवल पुरुष के बराबर, बल्कि अधिक बेहतर स्थान प्रदान किया है।

स्वामित्व का अधिकार

इस्लाम में स्त्री के स्वामित्व का अधिकार स्वीकार किया गया है। स्त्री अपने माल की स्वयं मालिक और स्वामी है। उसके पिता, उसके पति और दूसरे सगे-सम्बन्धियों को उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय बात यह है कि उसे अपने पति के माल को इस्तेमाल करने का अधिकार तो दिया गया, लेकिन उसकी निजी सम्पत्ति को उसकी अनुमति और मर्ज़ी के बिना किसी को इस्तेमाल करने का अधिकर नहीं हैं। वह व्यापार कर सकती है या कोई और जायज़ कारोबार। उसके अपने अधिकार में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं कर सकता।

भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी : स्त्री पत्नी की हैसियत से चाहे कितनी ही धनी हो, उसका भरण-पोषण (नान-नफ़क़ा) बहरहाल उसके पति के ज़िम्मे है, जो उसके पति की आर्थिक हैसियत के अनुसार, अर्थात् अपनी ताक़तभर निश्चित किया जाएगा। इस सम्बन्ध में पुरुष की लापरवाही और उदासीनता की स्थिति में शरई अदालत (इस्लामी न्यायालय) की ओर रुख़ किया जा सकता है। अगर उसका पति ग़रीब और निर्धन है और उसकी मदद के लिए पत्नी अपना माल उसको दे देती है तो यह बेहतरीन सदक़ा बन जाएगा। इस पर उसे अल्लाह के यहाँ सवाब और प्रतिफल मिलेगा। पति के न होने की स्थिति में भी सबसे क़रीबी रिश्तेदार, पिता, भाई आदि भरण-पोषण के ज़िम्मेदार बनाए गए हैं। उसको खुद अपने लिए परेशान होने की आवश्यकता नहीं।

महूर का अधिकार : पत्नी वैवाहिक अधिकार के तौर पर महूर की पात्र है और महूर का अदा करना अनिवार्य है।

विरासत का अधिकार : पत्नी को अपने पिता, पति, औलाद और दूसरे सगे-सम्बन्धियों से विरासत मिलती है। विरासत में स्त्री का हिस्सा पुरुष के मुक़ाबले में आधा रखा गया है। ऐसा इसलिए किया गया है कि स्त्री को भरण-पोषण और महूर के अधिकार प्राप्त होते हैं। जिनसे पुरुष वंचित है और पुरुष पर हर स्थिति में उसकी किफ़ालत (संरक्षण) ज़रूरी है। जबकि स्त्री पर वे ज़िम्मेदारियाँ नहीं हैं जो पुरुष पर हैं तो विरासत में भी उसका वह हिस्सा नहीं होना चाहिए जो पुरुष का है। पत्नी चाहे कितनी ही मालदार हो, उसका

पति न तो उसके माल पर किसी प्रकार का अधिकार रखता है, न उसके भरण-पोषण की ज़िम्मेदारी से मुक्त हो सकता है। इस तरह इस्लाम में स्त्री की आर्थिक हैसियत इतनी मज़बूत हो जाती है कि कभी-कभी वह पुरुष से ज़्यादा बेहतर स्थिति में होती है। मानो कि इस क्षेत्र में भी स्त्री पुरुष से अधिक बेहतर दर्जा रखती है।

अब तनिक तुलना कीजिए कि यूरोप स्त्री को कमानेवाला सदस्य बनाकर भी उसको वह आर्थिक समानता और मज़बूती प्रदान न कर सका, जो इस्लाम ने स्त्री को घर की रानी बनाकर आर्थिक समस्याओं से चिन्ता मुक्त कर दिया है।

शिक्षा-दीक्षा का अधिकार : स्त्री को न केवल धार्मिक और सांसारिक ज्ञान अर्जित करने की अनुमति दी गई, बल्कि उनकी शिक्षा-दीक्षा को उतना ही ज़रूरी क़रार दिया गया है जितना ज़रूरी पुरुष के लिए। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

"ज्ञान प्राप्त करना हर मुसलमान पर अनिवार्य है।"

नबी (सल्ल॰) से दीन और नैतिकता की शिक्षा जिस प्रकार पुरुष प्राप्त करते थे उसी तरह स्त्रियाँ भी प्राप्त करती थीं। श्रेष्ठ जनों को तो छोड़िए नबी (सल्ल॰) ने लौंडियों (दासियों) तक को शिक्षा प्राप्त करने का हुक्म दिया था। आप (सल्ल॰) की पत्नियों में विशेषकर हज़रत आइशा (रज़ि॰) न केवल स्त्रियों बल्कि मर्दों को भी शिक्षा देती थीं और बड़े-बड़े सहाबा व ताबईन उनसे हदीस व क़ुरआन की व्याख्या और धर्मशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करते थे। इसलिए जहाँ तक शिक्षा-दीक्षा का सम्बन्ध है, इस्लाम ने स्त्री और पुरुष के बीच कोई अन्तर नहीं रखा है, परन्तु इस बात में अन्तर अवश्य रखा गया है कि स्त्री को किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और पुरुष को किस प्रकार की। क्योंकि कार्य-क्षेत्र दोनों के अलग-अलग हैं।

इस्लामी दृष्टिकोण से स्त्री के लिए सही शिक्षा-दीक्षा वह है जो उसको बेहतरीन पत्नी और बेहतरीन माँ बनाए क्योंकि उसका कार्य-क्षेत्र घर है। इसलिए विशेष रूप से उसको उन विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिए, जो उस क्षेत्र में उसके लिए अधिक लाभकारी सिद्ध हो सकते हों। इसके अतिरिक्त वह ज्ञान भी उसके लिए आवश्यक है जो इनसान को इनसान बनानेवाले और

उसके आचरण को सँवारनेवाले और उसकी दृष्टि को व्यापकता प्रदान करनेवाले हैं। ऐसी शिक्षा और दीक्षा से लैस होने का अधिकार इस्लाम ने हर स्त्री को दिया है। इसके बाद यदि कोई स्त्री असामान्य बुद्धि एवं विवेक रखती हो और इस प्रकार की शिक्षा के अतिरिक्त वह दूसरी शिक्षाओं और कलाओं की उच्च शिक्षा भी प्राप्त करना चाहे, तो इस्लाम उसकी राह में रुकावट नहीं है, बशर्ते कि वह उन सीमाओं का उल्लंघन न करे जो शरीअत ने स्त्रियों के लिए निर्धारित की हैं।

धार्मिक सेवा एवं संगठित होकर काम करने का अधिकार : भलाई का आदेश देने और बुराई से रोकने की ज़िम्मेदारी जिस प्रकार पुरुषों पर डाली गई है, उसी प्रकार इस्लाम ने स्त्रियों पर भी सत्य की गवाही देने की महान ज़िम्मेदारी डाली है। उनको इस ज़िम्मेदारी से मुक्त नहीं किया। मगर स्त्रियों के विशेष स्वभाव और कार्य-क्षेत्र का इस मैदान में भी ख़याल रखा है। उसके ऊपर भी पुरुष की तरह अपनों और घरवालों को हक़ पर जमे रहने के साथ समाज के दूसरे लोगों, विशेषकर स्त्रियों की भलाई और सुधार की ज़िम्मेदारी भी डाली गई है। इस्लामी व्यवस्था को क़ायम करने की कोशिशों में वे अपने माता-पिता, भाई, पति व बेटों को इस ज़िम्मेदारी के लिए तैयार करें, और इसके बाद समाज में धर्म-स्थापना (इक़ामते दीन) का कर्तव्य निभाएँ। समरा बिन्त नुहैक (रज़ि॰) के बारे में उल्लिखित है कि वे बाज़ारों में घूम-घूमकर भलाई का हुक्म देतीं और बुराई से रोकती थीं। उनके एक हाथ में कोड़ा रहता था जिससे वे लोगों को बुराई करने पर मारती थीं। इस मामले में उम्मत की स्त्रियों ने न तो प्रजा की परवाह की और न शासकों और अधिकारियों की। उनके ईमानी जोश ने जिस तरह धर्म के खुले दुश्मनों का सामना किया, उसी तरह धर्म का नाम लेनेवालों के पाखण्ड और दिखावे को भी सहन करने से इनकार कर दिया। सच्ची बात के इज़हार (व्यक्त करने) में न तो बातिल (असत्य) की बड़ी से बड़ी शक्ति उनके लिए रुकावट है और न दबंग और भ्रष्ट अधिकारियों की ज़्यादती और कठोरता। यह अधिकार स्त्री को इस्लाम ने ही दिया है। मानो कि शरीअत की बताई हुई नैतिक सीमाओं के अन्दर रहकर जिस प्रकार पुरुष संगठन बनाकर विरोध प्रकट करने का अधिकार रखता है उसी तरह स्त्री भी बराबर का अधिकार रखती है, बशर्ते कि संगठन बनाना और सम्मेलन करना अच्छाई और भलाई को फैलाने और बुराई को

मिटाने के लिए हो।

राजनीतिक संघर्ष में भागीदारी : इस्लाम ने स्त्री को घरेलू ज़िन्दगी से अवश्य जोड़ा है, मगर उसके विचार और कर्म की दुनिया को सीमित नहीं किया। कार्य-क्षेत्र के बँटवारे के लिहाज़ से राजनीति, शासन व्यवस्था, सैन्य सेवाएँ और इसी प्रकार की दूसरी सुरक्षा-सेवाएँ, सामाजिक, आर्थिक और कारोबारी मामले पुरुषों से सम्बन्ध रखते हैं और इस्लाम स्त्री को सामाजिक और सभ्यता की दूसरी महत्वपूर्ण एवं आवश्यक सेवाओं के लिए इन झमेलों से अलग रखना चाहता है, लेकिन इसके बावजूद स्त्री अगर घरेलू ज़िम्मेदारियों को पूरा करने के बाद अपनी स्थिति, रुचि एवं रुझान के लिहाज़ से ज़िन्दगी के दूसरे क्षेत्रों में हिस्सा लेना चाहे तो इस्लाम उसे नहीं रोकता। तथापि उसके लिए कुछ नैतिक सीमाएँ निर्धारित करता है जो मानव-प्रकृति के अनुसार और मानव-उद्देश्य तक पहुँचने के लिए परम आवश्यक हैं। एक यह कि स्त्री हर हाल में अपनी वास्तविक स्थिति पर नज़र रखे। बाहर की ज़िम्मेदारियाँ इतनी न बढ़ाए कि उसकी अस्ल घरेलू ज़िम्मेदारियाँ अधूरी रह जाएँ। दूसरे यह कि वह अपने पति का आज्ञापालन करे। तीसरे यह कि अगर मुसलमान स्त्री अपने पति की अनुमति एवं आज्ञा के साथ घर से बाहर विभिन्न शैक्षिक एवं धार्मिक तथा सामाजिक सेवाएँ पेश करे तो इस हक़ीक़त को नज़रअंदाज़ न करे कि शरीअत (धर्मशास्त्र) ने, उसके और अपरिचित पुरुषों के बीच नैतिकता और क़ानून की दीवार खड़ी कर दी है। अतएव वह बाहर निकले तो सम्पूर्ण इस्लामी मान्यताओं और पाबन्दियों का लिहाज़ रखकर। इस प्रकार एक योग्य और गुणवान स्त्री एक ओर वे सारे काम कर सकती है जो विशेष रूप से स्त्रियों के करने के हैं और दूसरी ओर वह पर्दे में रहते हुए विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक कार्यों में हिस्सा ले सकती है। यह क्षेत्र चूंकि स्त्री के लिए पूर्ण रूप से मना नहीं है और खुद इस्लामी राज्य को भी ज़रूरत होती है कि वह स्त्रियों की समस्याएँ, आवश्यकताएँ और शिक्षा तथा विकास के बारे में उचित प्रयास करे, इसलिए शरीअत की सीमाओं का सम्मान करते हुए अगर स्त्रियों की संस्थाएँ प्रत्येक स्तर और प्रत्येक पहलू से भिन्न हों उदाहरण के तौर पर उनकी अपनी शिक्षा-संस्थान, अस्पताल, यूनीवर्सिटियाँ और कौंसिलें क़ायम हों तो वह वहाँ भी पुरुष के साथ-साथ देश की उन्नति व प्रगति में अपना हिस्सा प्रभावशाली ढंग से निभा सकती हैं।

न्याय प्राप्ति में समानता

इस्लाम ने न केवल मौलिक अधिकारों में स्त्री को श्रेष्ठता प्रदान की है, बल्कि उन अधिकारों के हनन होने की स्थिति में उसे न्याय और इनसाफ़ प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार प्रदान किया। उन अधिकारों की सुरक्षा के अवसर प्रदान करते हुए उसे क़ानूनी सहारे का अधिकार पुरुषों के बराबर प्रदान किया, क्योंकि इस्लामी समाज स्त्री पर अन्याय और अत्याचार को सहन नहीं कर सकता, बल्कि वह उसके अधिकारों का संरक्षक और हिफ़ाज़त करनेवाला होता है और न्याय और इनसाफ़ के लिए उसको हर गुहार का जवाब देना अपना धर्म समझता है।

एक सहाबी (रज़ि॰) ने अपनी लड़की का निकाह एक धनी व्यक्ति से कर दिया, लेकिन लड़की उस व्यक्ति को पसन्द नहीं कर रही थी। उसने हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) से अर्ज़ किया कि मेरे पिता ने मेरा निकाह अपने एक मालदार भतीजे से कर दिया है, ताकि अपने जीवनयापन का सामान कर सकें। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया : "अगर तुझको यह विवाह पसन्द नहीं है, तो तू आज़ाद है।" उसने कहा : "मेरे पिता ने जो क़दम उठाया है मैं उसको बहाल करती हूँ, बल्कि मैं चाहती हूँ कि स्त्रियों को यह मालूम हो जाए कि उनकी इच्छा के विरुद्ध पिता को उनके निकाह का अधिकार नहीं है।"

समानता से बढ़कर सद्व्यवहार

इस्लाम ने पुरुषों को स्त्रियों के साथ सद्व्यवहार और दानशीलता का बर्ताव करने के विशेष निर्देश दिए हैं। क़ुरआन का इरशाद है—

"स्त्रियों के साथ भले ढंग से रहो-सहो।" (क़ुरआन, 4:19)

फिर कहा—

"आपस के सम्बन्धों में दानशीलता को न भूलो।"
(क़ुरआन, 2:237)

नबी (सल्ल॰) का कथन है—

"तुममें से अच्छे लोग वे हैं जो अपनी पत्नियों के साथ अच्छे हैं और परिवार के साथ मुहब्बत और मेहरबानी का व्यवहार करनेवाले हैं।"

मानो कि पुरुष के किरदार को जानने के लिए मापदंड भी स्त्री को बनाया है।

उपरोक्त उदाहरण की रौशनी में हमने देखा कि जो मौलिक अधिकार हर इनसान को प्राप्त हैं, उनमें इस्लाम स्त्री को न केवल पुरुष के बराबर क़रार देता है, बल्कि केवल इस बात पर कि वह मानवजाति की अमानतदार और पालक है, पुरुष से अधिक सम्माननीय, उससे तीन गुना अधिक सेवा की पात्र और पैर के नीचे जन्नत रखनेवाली हस्ती बन जाती है।

सामाजिक व्यवस्था में स्त्री और पुरुष के मध्य समानता और कार्यक्षेत्र का निर्धारण

जैसा कि स्पष्ट हो चुका है कि इस्लाम एक ओर सामाजिक और सामूहिक परिधि के अन्दर स्त्री और पुरुष की सम्पूर्ण समानता का दावेदार है और किसी पहलू से भी पुरुष के लिए किसी प्रकार की प्राथमिकता स्वीकार करने के लिए उदार नहीं है, क्योंकि प्रकृति न तो किसी को अधिक चाहती है और न किसी से दुश्मनी रखती है। अतः उसने स्त्री को स्त्री की जगह रखकर और पुरुष को पुरुष के स्थान पर रखकर समान दर्जा दिया है, लेकिन दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था में वह पुरुष को स्त्री पर एक दर्जा प्राथमिकता देता है और इस प्राथमिकता को सामाजिक व्यवस्था में सन्तुलन बनाए रखने के लिए ज़रूरी क़रार देता है।

> "पुरुष स्त्रियों के संरक्षक एवं व्यवस्थापक हैं, इस आधार पर कि अल्लाह ने उनमें से एक को दूसरे पर श्रेष्ठता प्रदान की है और इस कारण कि पुरुष अपने माल ख़र्च करते हैं।" (क़ुरआन, 4:34)

क़व्वाम (संरक्षक) का अर्थ एवं महत्व

प्राथमिकता के इस मसले को समझने से पहले आइए देखें कि क़व्वाम किसे कहते हैं? क़व्वाम उस व्यक्ति को कहते हैं जो किसी संगठन, संस्था या सामूहिक व्यवस्था को चलाने, उसकी सुरक्षा एवं देख-भाल करने और उसकी अपेक्षित आवश्यकताएँ पूरी करने का ज़िम्मेदार हो। पुरुष इन तीनों अर्थों में क़व्वाम है।

एक ख़ानदान से लेकर राज्य तक फैली हुई सैकड़ों संस्थाओं में से किसी

एक की ओर इशारा कीजिए जहाँ मुखिया और प्रमुख न हो या एक से अधिक हों और वे बिल्कुल एक जैसे या समान अधिकार रखने वाले हों। "वहदत" (एकत्व) इस कायनात ही के इन्तिज़ाम और व्यवस्था तक सीमित नहीं। यह हर छोटे से छोटे प्रबन्धन इकाई के लिए भी ज़रूरी है। जहाँ समान अधिकार और समान हैसियत होगी वहाँ सिरे से कोई व्यवस्था चल ही नहीं सकती। अस्पताल, कॉलेज और कारख़ाने से लेकर राज्य एवं देश तक हर सामूहिक संस्था में प्रमुखता की आवश्यकता होती है। फिर क्या वजह है कि दूसरी संस्थाओं की तरह ख़ानदान और घर में जो कि सामूहिकता की मूल इकाई है प्रमुखता की आवश्यकता न हो?

घरेलू ज़िन्दगी की व्यवस्था को बरक़रार रखने के लिए हर स्थिति में पति-पत्नी में से एक का संरक्षक एवं अगुआ होना ज़रूरी है। अगर दोनों बिल्कुल समान हैसियत और समान अधिकार रखनेवाले हों तो कुप्रबन्ध का पैदा होना यक़ीनी है। जैसा कि वास्तव में उन क़ौमों में ज़ाहिर हो रहा है जिन्होंने व्यावहारिक रूप से पति-पत्नी के बीच इस प्रकार की समानता और बराबरी पैदा करने की कोशिश की है।

इस्लाम चूँकि एक स्वाभाविक धर्म है, इसलिए उसने मानव-प्रकृति का लिहाज़ करके पति-पत्नी में से एक को परिवार का मुखिया और संरक्षक नियुक्त किया है और यह हैसियत पुरुष को दी है। पुरुष के संरक्षक और एक दर्जे ऊपर होने का अर्थ यही है कि वह अपने ख़ानदान का प्रबन्धक और संरक्षक है और नबी (सल्ल॰) की एक हदीस के अनुसार उससे इस ज़िम्मेदारी के सम्बन्ध में ख़ुदा के यहाँ पूछ-गच्छ होगी।

यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि क्या इससे पुरुष शासक और स्त्री शासित बन गई? क्या पुरुष स्वामी और स्त्री सेविका बन गई और उसके मान-सम्मान में अन्तर आ गया? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि क्या वह सामूहिक संस्था जहाँ पुरुषों के मुखिया और प्रमुख हैं, क्या वहाँ पुरुष, पुरुषों के ग़ुलाम हैं? अगर नहीं तो फिर यह मामला केवल स्त्री ही के साथ क्यों उलटा समझा जाता है। जहाँ तक मान-सम्मान का सम्बन्ध है, इसका "कर्तव्यों में समानता" से कोई सम्बन्ध नहीं। प्राइमरी पाठशाला का एक मेहनती और ईमानदार अध्यापक डिप्टी कमिश्नर से अधिक सम्मान का पात्र है, हालाँकि संसाधन,

अधिकार और पद की गरिमा के लिहाज़ से उन दोनों के बीच कोई समानता नहीं। किसी के संरक्षण और निगरानी में होना कोई नीचता और अपमान की बात नहीं है। अगर बच्चों और नौजवान बेटों एवं बेटियों की आत्मा को यह कहने से ठेस नहीं पहुँचती कि उनका पिता उनका संरक्षक है या बूढ़े माता-पिता अपने बच्चों के संरक्षण और निगरानी में आकर अपमानित नहीं होते तो स्त्री के लिए मात्र यह बात कि पुरुष उसका संरक्षक है क्यों कर नदामत और शर्मिन्दगी का कारण है। वह क्यों इस चिन्ता से ग्रस्त है कि पति की तरह जब तक आर्थिक दायित्वों का बोझ न उठाए उसे समान हैसियत और समान सम्मान प्राप्त नहीं हो सकता।

प्रश्न यह उठता है कि पुरुष ही संरक्षक क्यों? पुरुष को संरक्षक (क़व्वाम) बनाने के क्या कारण हैं इस्लामी धर्मशास्त्र खुद ही स्पष्ट करता है, जो इस तरह है—

स्वाभाविक कार्यक्षेत्र

सभ्यता और समाज की जो उच्च सेवा स्त्री से लेना वांछित है और जिस उद्देश्य के लिए जन्म देने का बोझ इस पर डाला गया, उन उद्देश्यों के लिए ज़रूरी था कि उसे समाज में सम्मान और सुरक्षा प्राप्त हो। इसलिए बाहरी वातावरण और उसकी गन्दगियों से सुरक्षित करने का प्रबन्ध किया गया। सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन, पर्दे और निगाहें नीची रखने के आदेश उसको यह सुरक्षा, सम्मान और गरिमा प्रदान करते हैं। नारी के नारीत्व और फ़ितरत को बरक़रार रखने के लिए पुरुष को ही संरक्षक बनाना परम आवश्यक था। स्त्री के कार्य-क्षेत्र को स्पष्ट करते हुए नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया—

> "अर्थात् स्त्री अपने पति के घर की हाकिम है और अपनी हुकूमत के दायरे में अपने कर्म के लिए उत्तरदायी है।"
>
> (हदीस : बुख़ारी)

यह कार्य-क्षेत्र ठीक उसकी फ़ितरत और स्वभाव के अनुसार है। अतः ईश्वर ने पुरुष को संरक्षक बनाकर स्त्री का आर्थिक कफ़ील (ज़िम्मेदार) बना दिया और उसके मान-सम्मान की सुरक्षा और समस्त आवश्यकताओं को पूरा

करनेवाला बनाकर स्त्री को खुद दूसरे बड़े उद्देश्य की पूर्ति के लिए आज़ाद कर दिया। उसका मूल कार्य मानवजाति की अमानत को संभालना, अपने ख़ूने-जिगर से उसे सींचना और शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करना है और इस तरह मानव-समाज को उसकी सबसे क़ीमती पूँजी का प्रबन्ध करना है। इसी सेवा ने उसे महानता के उस स्थान पर पहुँचाया कि जन्नत इसके क़दमों तले और पिता की अपेक्षा तीन गुना अधिक सेवा का हक़दार ठहराया। यह स्थान उस समानता और बराबरी से बहुत ऊँचा है, जिसके लिए आज इस महान हस्ती को दौड़ाया जा रहा है।

आर्थिक संरक्षण

पुरुष को क़व्वाम (संरक्षक) बनाने की दूसरी बड़ी वजह क़ुरआन की आयत में हमें मिल जाती है जिसमें पुरुष को क़व्वाम बनाने का आदेश दिया गया।

> "मर्द औरतों के मामले में ज़िम्मेदार है, इस आधार पर कि अल्लाह ने उनमें से एक को दूसरे के मुक़ाबले में आगे रखा है, और इस आधार पर कि पुरुष अपने माल ख़र्च करते हैं।"
>
> (क़ुरआन, 4:34)

अर्थात् पुरुष पर परिवार के लिए रोज़ी कमाने और ज़िन्दगी की ज़रूरतों को पूरा करने की ज़िम्मेदारी है। सिवाए किसी अपवादित स्थिति के परिवार के संरक्षण का बोझ पुरुष उठाता है और अपनी क्षमताओं के लिहाज़ से वही इस बोझ को उठाने के लायक़ है। बीवी-बच्चों के भरण-पोषण का क़ानूनी उत्तरदायी पुरुष ही है स्त्री नहीं। इसलिए पुरुष ही इस बात का पात्र है कि इस बड़ी ज़िम्मेदारी के कारण उसको संरक्षण का अधिकार दिया जाए।

स्वाभाविक एवं शारीरिक संरचना

यह एक सच्चाई है कि प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर हर तरह की योग्यता एवं क्षमता नहीं होती। कोई किसी कार्य के लिए उचित है तो कोई किसी दूसरे कार्य के लिए अनुचित होगा। किसी की शारीरिक संरचना, मेहनत और मशक़्क़त बर्दाश्त करेगी तो कोई बिल्कुल उसके योग्य न होगा। कोई वैज्ञानिक अन्वेषण की योग्यता रखता है, तो कोई कलाकार बनने की क्षमता अपने

अन्दर रखता है। योग्यताओं एवं क्षमताओं का यह अन्तर यूँ तो दो व्यक्तियों के बीच पाया जाता है, लेकिन जहाँ इनसानों में से पुरुष और स्त्री की आपस में तुलना की जाए तो यह अन्तर बहुत ही स्पष्ट नज़र आने लगता है। स्त्री और पुरुष के बीच यह अन्तर शरीअत की नज़र में वैचारिक और व्यावहारिक दोनों पहलुओं से है। अतः स्त्री के सम्बन्ध में नबी (सल्ल॰) का कथन है—

"स्त्री नाक़िस है अक़्ल और दीन में।" (हदीस : बुख़ारी)

यहाँ अक़्ल से मानसिक शक्ति की ओर संकेत है और दीन से तात्पर्य उसकी शारीरिक शक्तियाँ हैं अर्थात् इन दोनों पहलुओं से वह पुरुष से कमज़ोर और कमतर है।

(सैयद जलालुद्दीन उमरी 'स्त्री इस्लामी माअशरे में' पेज-200)

आधुनिक अन्वेषणों ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि स्त्री का दिमाग़ पुरुष के दिमाग़ से छोटा है। (मौलाना मुहम्मद ज़फ़रुद्दीन, इस्लाम का निज़ामे इफ़्फ़त व अज़मत, पेज-247) । फिर स्त्री हर हाल में और हर समय स्वस्थ नहीं रहती। इस पर ज़िन्दगी में कुछ समय ऐसा गुज़रता है जिसमें वह बड़ी हद तक विवश हो जाती है और दूसरे की सहायता और मदद की मोहताज रहती है। मेरा तात्पर्य गर्भ, दूध पिलाने, बच्चों की देख-रेख और अपवित्रता की अवधि से है। भावनाओं में बह जाना, शर्म और ज़िन्दगी की नज़ाकत, इन्तिहापसन्दी की ओर झुकाव और मुहब्बत स्त्री की फ़ितरत है और यह स्त्री के लिए ऐब नहीं, बल्कि उसका हुस्न (सौंदर्य) है, इससे जो कुछ भी फ़ायदा उठाया जा सकता है, फ़ितरत पर क़ायम रखकर ही उठाया जा सकता है। उसको पुरुषों की तरह सीधा और सख़्त बनाना उसको तोड़ने के समान है।

अतएव इस्लामी शरीअत ने उसकी उन कमज़ोरियों को केवल स्वीकार ही नहीं किया है, बल्कि ज़िन्दगी के हर पहलू में उनकी छूट दी है। चूँकि दुनिया में कार्य एक ही प्रकार के नहीं होते। छोटे-बड़े, महत्वपूर्ण और ग़ैर-महत्वपूर्ण हर प्रकार के होते हैं। उनको करने के लिए उसी प्रकार की योग्यताओं की आवश्यकता होती है और पुरुष बौद्धिक एवं शारीरिक शक्तियों में स्त्री से मज़बूत होता है। वह अधिक शक्तिशाली और बलवान होता है। गम्भीर और स्थिर स्वभाववाला होता है और आमतौर पर हर समय एक जैसी स्थिति में रहता है। इसलिए उसको संरक्षक बनाकर उसको वही काम दे दिए, जो उसके

स्वभाव और योग्यता के अनुसार थे। उदाहरण के तौर पर बाहरी ज़िम्मेदारियाँ, आर्थिक दौड़-धूप, रक्षा और हुकूमत की ज़िम्मेदारियाँ आदि।

ग़ौर कीजिए तो ज्ञात होगा कि ये सारे कार्य मानव (स्त्री-पुरुष दोनों की) प्रकृति के अनुसार हैं। यह प्रकृति (फ़ितरत) ईश्वर की प्रदान की हुई है। किसी लिंग के कारण उसे खुद प्राप्त नहीं हुआ। इसी प्रकार श्रेष्ठता की प्राप्ति में पुरुष की अपनी किसी कोशिश या इच्छा की कोई भूमिका नहीं। यह स्रष्टा की अपनी योजना है, जिसके अन्तर्गत उसने पुरुष और स्त्री के बीच यह दर्जाबन्दी की है। इस पर आपत्ति करनेवाले और इसके ख़िलाफ़ चीख़ने-चिल्लाने का अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि हम ईश्वर के इस फ़ैसले से प्रसन्न नहीं हैं। अतः अब अगर किसी को इस प्राथमिकता और निर्धारण पर आपत्ति हो तो उसे बुद्धिहीन ही कहा जा सकता है।

स्वाभाविक कार्य निर्धारण को न मानने के परिणाम

यह बात भी समझ लीजिए कि ईश्वर के इस कार्य निर्धारण के विरुद्ध जब भी इनसान ने कोई काम किया वह तबाह और बर्बाद ही हुआ। स्त्री ने ईश्वर के कार्य निर्धारण के अनुसार एक पुरुष की सेवा को दासता समझा तो वह एयर होस्टेस, टेलीफ़ोन ऑपरेटर, प्राइवेट सिक्रेट्री और मज़दूर की हैसियत से हर जगह सैकड़ों पुरुषों की दास बन गई। पार्लियामेन्ट हो, बैंक हो, राजनीतिक पार्टियाँ हों, ट्रेड यूनियन, संस्थाएँ, कार्यालय हों या कारख़ाने, रक्षा मंत्रालय या गृह मंत्रालय आम कारोबारी संस्थान हों या डिपार्टमेंटल स्टोर जैसी बड़ी-बड़ी दुकानें, कोई ऐसी जगह है, जहाँ स्त्री की श्रेष्ठता तो छोड़िए उसकी समान हैसियत भी स्वीकार की गई हो? जो स्त्री मात्र अपने पति का बिस्तर बिछाया करती थी वह अब बड़े-बड़े होटलों, क्लबों और मनोरंजन स्थलों पर सैकड़ों अपरचित पुरुषों के बिस्तर सजाया करती है, जो अपने एक पति और बच्चों को प्यार व मुहब्बत के वातावरण में खाना खिलाती, वह अब होटलों और क्लबों की मेज़ों पर हज़ारों पुरुषों को खाना खिलाती, शराब पिलाती और उनकी झिड़कियाँ सुनती है। उनकी अश्लील बातों का निशाना बनती है। उनके हाथों अपनी इज़्ज़त लुटाती है और इज़्ज़त और सम्मान के बजाए तिरस्कार और अपमान उसकी क़िस्मत बनती है।

वास्तविकता यह है कि यूरोप और उसकी अन्धी पैरवी करनेवालों ने स्त्री

को दिया तो कुछ नहीं मगर उससे सब कुछ छीन लिया। उसका घर, उसका सुकून, उसकी इज़्ज़त, उसका हुस्न, उसका शरीर, उसकी क्षमताएँ—उसका ज़बरदस्त शोषण किया और उसे ज़ुल्म और अन्याय की चक्की में पीस डाला, उसे "अधिकारों" के नाम पर बेवक़ूफ़ बनाया गया। वह मूर्ख और भ्रमित होकर अपने मान-सम्मान, मर्यादा और पवित्रता एवं सम्मानित हैसियत खो बैठी है। स्त्री को तिरस्कार और अपमान में धकेलने और संरक्षण के सारे सहारों से वंचित करके अपनी जीविका और रोज़ी कमाने की मुसीबत में ग्रस्त करने के शैतानी उपायों और साज़िशों ने जिस छलपूर्ण नौटंकी की आड़ में उसे आगे बढ़ाया है वह स्त्री और पुरुष की समानता ही का नारा है।

स्त्री के लिए वास्तविक समानता

निस्संदेह यह एक स्पष्ट वास्तविकता है कि आज से चौदह सौ वर्ष पूर्व ईश्वर ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के ज़रिए स्त्री और पुरुष की समानता का जो उसूल और क़ानून हम तक पहुँचा दिया वही अस्ल और अटल है। वह उसूल यह है कि जिस प्रकार के अधिकार पुरुषों के स्त्रियों पर हैं, उसी प्रकार के अधिकार स्त्रियों के पुरुष पर हैं। यह क़ानून वास्तव में समानता का आधार और एलान है। अब भी अगर किसी को यह ग़लतफ़हमी हो कि पुरुष की क़व्वामियत (संरक्षण) से स्त्री के अधिकारों का हनन हो रहा है तो उपरोक्त मौलिक अधिकारों में से हर एक को बारी-बारी ले लीजिए और ऊपर की बहसों की रोशनी में पुरुषों के साथ तुलना कीजिए। अगर आप पक्षपात और स्वार्थ से ग्रस्त नहीं हैं तो आप अवश्य पुकार उठेंगे कि निस्सन्देह मात्र इस्लाम ही ऐसा धर्म और विधान है जिसने स्त्रियों को पुरुषों से कहीं ज़्यादा अधिकार दिए हैं। हाँ, पुरुष संरक्षक होने की हैसियत से निस्सन्देह स्त्री से एक दर्जा बुलन्द है, लेकिन यह एक दर्जा कर्तव्यों के मामलों में ही बुलन्द है अधिकार के मामले में नहीं।

स्त्री पीड़ित क्यों?

स्त्री और पुरुष के अधिकारों के बारे में अपने धर्म से व्यापक और पूर्ण क़ानून पा लेने के बाद और स्त्री एवं पुरुष के अधिकारों में ऐसी संतुलित समानता जान लेने के बाद भी एक प्रश्न दिमाग़ में खटकता रहता है कि प्रथम

दौर की कुछ शताब्दियों के अलावा स्त्री पीड़ित क्यों रही? दूर जाने की आवश्यकता नहीं। भारत में मुसलमानों के शासनकाल में स्त्री को कौन-सा "ऊँचा स्थान" दिया गया और आज इस्लामी प्रजातंत्र पाकिस्तान में भी स्त्री को कौन से समान अधिकार दिए जा रहे हैं?

इस प्रश्न का उत्तर बहुत आसान है। अगर सही निगाहों से देखा जाए तो सबसे महत्वपूर्ण और बुनियादी बात यह है कि मुसलमानों की हुकूमत और इस्लामी हुकूमत बदक़िस्मती से दो अलग-अलग शब्दावली हैं। यह ज़रूरी नहीं कि जो मुसलमानों की हुकूमत हो, वह पूरी तरह से इस्लामी भी हो। मुसलमानों के शासनकाल में कहीं पश्चिमी सभ्यता प्रभावी रही और कहीं पूर्वी। और ऐसी रस्म और परम्पराएँ समाज में फैलती रहीं जिनका इस्लाम से कोई लेना-देना नहीं। स्त्रियों के अधिकारों का मसला भी दुर्भाग्यवश इसी प्रकार ग़लत ढंग से समझा गया और इस बुरी तरह तोड़ा-मरोड़ा गया कि इसमें और पति-पत्नी के अस्ल इस्लामी क़ानून में बहुत ही दूर की समानता बाक़ी रह गई। अब इस्लामी शरीअत के नाम से मुसलमानों में दाम्पत्य जीवन के जो क़ानून प्रचलित हैं वे न उचित हैं न व्यापक और न पूर्ण। इसकी कमियों ने मुसलमानों के सभ्य-जीवन पर इतना बुरा प्रभाव डाला है कि शायद किसी दूसरे क़ानून ने नहीं डाला।

नकारात्मक अधिकारों के लिए सकारात्मक प्रयास

स्त्री के उत्पीड़न की मूल सीमा वह है जहाँ उसे इस्लाम के द्वारा प्रदान किए हुए अधिकारों से वंचित होना पड़ता है और जहाँ पुरुष अल्लाह और रसूल (सल्ल॰) के निर्धारित किए हुए अधिकारों को अदा नहीं करते। आर्थिक ज़िम्मेदारी महर, भरण-पोषण और विरासत जैसे कर्तव्यों का निर्वाह नहीं करते। उन्हें ऐसे अवसर प्रदान नहीं करते जहाँ वे अपनी फ़ितरत, योग्यता और कार्य-क्षेत्र के अनुसार आज़ादी से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर सकें, वे उन पर ज़्यादती करते हैं। मामूली-मामूली बातों पर तीन तलाक़ें दे मारते हैं। अलग रहने की स्थिति में उनका माल हड़प कर लेते हैं और अधिकारों के हनन पर न्याय भी नहीं देते। ये सारे रूप अत्याचार के हैं और जो स्त्री या पुरुष इस अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं, आन्दोलन करते हैं, संगठन बनाते हैं वे सब भलाई का काम करते हैं। हर ईमानवाले को उनका सहयोग करना

अनिवार्य है। इस्लाम के दिए हुए अधिकारों को पुनः प्राप्त करने के लिए ऐसे हर संगठन के संघर्ष में हम उनके साथ हैं। लेकिन अधिकारों के नाम पर एक "मक्कार गिरोह" अगर नारी उत्पीड़न के बारे में हमारी स्त्रियों को पश्चिम की दी हुई आज़ादी के रंग में रंगना और ख़ानदान की इकाई और संस्कृति को बर्बाद करके उसको अपनी संयुक्त सभाओं की शोभा बढ़ाना चाहता है, तो उससे हमारी खुली लड़ाई है।

आइए क़ुरआन से फ़ैसला करा लें

उपरोक्त बौद्धिक तर्कों के प्रकाश में यह प्रमाणित हो गया है कि इस्लाम के प्रदान किए हुए अधिकार स्त्री और पुरुष के बीच न्याय एवं समानता पर आधारित हैं और अनुभव से भी यह पूर्णतया स्पष्ट हो चुका है कि जब और जहाँ इन उसूलों और सिद्धान्तों की अवहेलना की गई, वहीं क़ौम के आचरण और नैतिकता पर दुष्प्रभाव पड़े और क़ौम बर्बादी और विनाशता के गढ़े में जा गिरी। वास्तविकता यह है कि इस्लामी क़ानून ईमान, बुद्धि, तर्क, अनुभव व्यावहारिकता आदि के पैमाने पर पूरे उतरते हैं।

(साभार : आलमी तर्जमानुल-क़ुरआन, नवम्बर 2011)

■■